अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में हिंदी साहित्य

संपादक
डॉ. रजत रानी मीनू
डॉ. साधना अग्रवाल

सह संपादक
डॉ. दीनदयाल
डॉ. अनुराधा गुप्ता

अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड
4697/3, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
फोन : 011-23281655, 011-43708938
E-mail: anamikapublishers@yahoo.co.in

प्रथम संस्करण : 2018
© प्राचार्या, कमला नेहरू कालेज
आई.एस.बी.एन. 978-81-7975-866-3

भारत में मुद्रित

अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, 4697/3, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002 द्वारा प्रकाशित। शिवानी कम्प्यूटर्स, दिल्ली 110093 द्वारा शब्दांकित एवं विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, ट्रॉनिका सिटी, गाजियाबाद में मुद्रित।

अनुक्रम

संपादकीय 11

1. अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में प्रवासी भारतीयों की जातीयता 15
   — *डॉ. कल्पना भाकुनी*
2. हिंदी का वैश्विक परिप्रेक्ष्य : संदर्भ चीन 18
   — *प्रो. अनिल राय*
3. वैश्विक परिदृश्य की लोकानुकूल हिंदी 23
   — *प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन*
4. यादों की गलियों में : पांचवें और छठे दशक का रेडियो और टेलीविजन 33
   — *डॉ. सुषम बेदी*
5. प्रवासी साहित्य कितना प्रवासी 39
   — *डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण*
6. अभिमन्यु अनत : साहित्यिक रिश्तों को याद करते हुए 50
   — *डॉ. कमल किशोर गोयनका*
7. दुनिया की जेलों में साहित्य और मीडिया : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 55
   — *डॉ. वर्तिका नंदा*
8. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में हिंदी साहित्य : संदर्भ प्रवासी साहित्य 64
   — *डॉ. बिमलेंदु तीर्थंकर*
9. विदेश में स्वदेश का गुणगान : अर्चना पैन्यूली का वेअर डू आई बिलॉन्ग 69
   — *डॉ. पुष्पा गुप्ता*

10. हिंदी का प्रवासी साहित्य : दशा और दिशा
— डॉ. मीना 82
11. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में हिंदी साहित्य (प्रवासी हिंदी साहित्य के संदर्भ में)
— शाहीन बानो 90
12. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में हिंदी (देश से विदेश तक रामकथा का स्वरूप)
— डॉ. सुधा निरंजनी 93
13. ब्रिटेन की धरती से सीधे...
— डॉ. स्वाति श्वेता 98
14. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में समकालीन कथा-साहित्य
— डॉ. वीणा शर्मा 102
15. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में हिंदी कविता : स्त्री अस्मिता के स्वर
— डॉ. संगीता वर्मा 107
16. अमेरिकी हिंदी प्रवासी कहानियां : एक अनुशीलन
— डॉ. मोहम्मद इसराइल 115
17. अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में ग्राम्य-जीवन
— डॉ. निशा मलिक 119
18. दिव्या माथुर की कहानियों में स्त्री-छवि
— डॉ. अरविंदर कौर 124
19. मूल्यहीनता-बोध और प्रवासी हिंदी कहानियां (प्रवासी मां और हननीय के विशेष संदर्भ में)
— डॉ. सुषमा सहरावत 134
20. हिंदी साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन और प्रवासी कहानी-साहित्य (संदर्भ : तेजेंद्र शर्मा की कहानियां)
— डॉ. कमलेश कुमारी 139
21. वैश्वीकरण और समकालीन हिंदी कथा-साहित्य
— डॉ. अनीता यादव 150
22. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में प्रवासी लेखिका स्नेह ठाकुर
— डॉ. साधना अग्रवाल 157

23. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में मॉरीशस का हिंदी कथा-साहित्य
— डॉ. ज्योति शर्मा 162
24. अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में अप्रवासी कहानियां और दलित पात्र
— डॉ. रजत रानी मीनू 168
25. प्रवासी हिंदी कविता
— डॉ. भारती 178
26. अमेरिकी महिला प्रवासी कथा-साहित्य में स्त्री समस्या
— डॉ. प्रकाश चंद बैरवा 184
27. विश्व पटल पर हिंदी भाषा और उसका साहित्य
— डॉ. अनिता देवी 191
28. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में शोभा नारायण का कथा-साहित्य और स्त्री परिप्रेक्ष्य
— डॉ. ममता धवन 197
29. हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का वैश्विक परिदृश्य
— डॉ. दीनदयाल 202
30. वैश्विक परिदृश्य में रामकाव्य
— डॉ. अनीता मिंज 209
31. सुषम बेदी की कहानियों में अंतर्द्वंद्व
— डॉ. संगीता गुप्ता 213
32. उषा प्रियंवदा की कहानियों में भारतीय स्त्री
— डॉ. वंदना 222
33. वैश्वीकरण और हिंदी
— डॉ. रेखा रानी कपूर 228
34. हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य और उषा राजे सक्सेना की कहानी 'सलीना तो सिर्फ शादी करना चाहती थी'
— उमर शाह 235
35. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में प्रवासी साहित्य
— डॉ. दत्ता कोल्हारे 238
36. अमेरिका में प्रवासी हिंदी साहित्य
— सुनील कुमार वर्मा 243

37. हिंदी का वैश्विक परिदृश्य और सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'संदर्भहीन' 246
— *अंकित अभिषेक*
38. प्रवासी कथा-साहित्य में नारी जगत 250
— *डॉ. सीमा शर्मा*
39. सुषम बेदी के कथा-साहित्य में नारी-जीवन 255
— *सचिन कुमार वर्मा*
40. प्रवासी हिंदी कहानी : मूल संवेदना 259
— *डॉ. डिंपल गुप्ता*
41. प्रवासी हिंदी कथा-साहित्य : भाषा का स्वरूप (विशेष संदर्भ—इंग्लैंड एवं अमेरिका में हिंदी कथा-साहित्य) 266
— *उपासना*
42. प्रवासी कथा-साहित्यः अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य 273
— *रीता*
43. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में हिंदी साहित्य 293
— *अमित कुमार पांडेय*
44. दिव्या माथुर की कहानियों में मूल संवेदना 299
— *डॉ. राजमोहिनी सागर*
45. प्रवासी हिंदी कहानियों में निहित सांस्कृतिक मूल्यों का विश्लेषण 306
— *डॉ. कहकशां ए. साद*
46. प्रवासी कथा-साहित्य में नारी-चेतना 312
— *शबनम तबस्सुम*
47. हिंदी : भारत व विश्व में 318
— *डॉ. करुणा शर्मा*
48. वैश्विक साहित्य : भाव और विचारों का अनूठा सामंजस्य 328
— *वंदना*
49. हिंदी साहित्य और वैश्वीकरण की चुनौतियां 332
— *डॉ. प्रतिभा चौहान*
50. प्रवासी साहित्य का समकालीन संदर्भ 339
— *डॉ. पूनम काजल*

51. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में हिंदी साहित्य 342
— *विष्णु*
52. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी साहित्य की गूंज 345
— *सुमन रानी*
53. अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में हिंदी साहित्य (नेपाल के विशेष संदर्भ में) 348
— *डॉ. पूनम यादव*

42. प्रवासी कथा-साहित्य : अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य

रीता

विदेशों में रहने वाले हिंदी साहित्यकारों के कारण आज हिंदी का फलक विस्तार पा रहा है। इन रचनाकारों की रचनाओं में विश्व के विभिन्न देशों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियां हिंदी साहित्य की सृजनशीलता का हिस्सा बन गई हैं। प्रवासी रचनाकारों की कृतियों का महत्व इसलिए भी है कि उनके साहित्य के माध्यम से भिन्न-भिन्न देशों की परिवेशगत परिस्थितियों की जानकारी उपलब्ध हो जाती है। विभिन्न देशों की परिस्थितियों का हिंदी पाठकों तक पहुंचना महत्वपूर्ण है। इससे हिंदी साहित्य का अंतर्राष्ट्रीय विकास हो रहा है। बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय विकास बहुत तेजी से हुआ है। हिंदी साहित्य में नए विषयों पर, अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चिंताओं पर खूब लिखा जा रहा है। प्रवासी साहित्यकार, अपने लेखन द्वारा लगातार हिंदी अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप निर्मित कर रहे हैं।

प्रवासी भारतीय लेखकों न केवल अपने साहित्य के माध्यम से हिंदी और उसके साहित्य को वैश्विक आधार दिया है बल्कि भारत में भी हिंदी साहित्य को विस्तृत किया है। प्रवासी साहित्यकारों ने हिंदी भाषा में मौलिक साहित्य का सृजन कर वैश्विक मंच पर हिंदी की प्रतिष्ठा की अभिवृद्धि की है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है कि हिंदी का प्रवासी साहित्य बहुत समृद्ध है। प्रवासी साहित्य की अपनी परंपरा, इतिहास, उपलब्धियां और गरिमा है। प्रवासी साहित्य ने हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप विकसित किया है। जब हम हिंदी भाषा और साहित्य में वैश्विक परिदृश्य की बात करते हैं तो इसलिए क्योंकि हिंदी भाषा विश्व स्तर पर अपनी पहचान बना

रही है। विश्व के 160 देशों में इसका प्रयोग किया जा रहा है। हिंदी साहित्य भी विश्व स्तरीय है। तुलसी कृत, *रामचरितमानस*, जयशंकर प्रसाद का *कामायनी* महाकाव्य, प्रेमचंद के उपन्यास *गोदान* को विश्व की क्लासिकल रचनाएं माना जाता है और कई भाषाओं में इनका अनुवाद हो चुका है। देश-विदेश मे हिंदी साहित्यकार लगातार बेहतरीन रचनाएं दे रहे हैं।

वैश्विक परिदृश्य के संदर्भ में भाषा की क्षमताओं के प्रति आश्वस्त होना पड़ता है। किसी भाषा के वैश्विक स्तर पर स्वीकार्य होने के कुछ आधार माने जाते हैं, जैसे—वह भाषा कितने बड़े भू-भाग में बोली जा रही है और उसमें कितना साहित्य रचा जा रहा है। कितने लोगों द्वारा प्रयोग की जा रही है, व्यवहार में लाई जा रही है, देश और विदेशों में प्रयुक्त हो रही है। उस भाषा का साहित्य अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सांस्कृतिक तथा सामाजिक चिंताओं व सरोकारों तथा नए विषयों पर लिखा जा रहा हो। इस दृष्टि से हिंदी भाषा और साहित्य इन मापदंडों पर खरे उतरते हैं।

यदि हिंदी भाषा की बात की जाए तो अब वह विश्व की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा बन चुकी है। हिंदी ने चीन की मंदारिन को नंबर एक के सिंहासन से उतार दिया है। 'सभी महाद्वीपों तथा 160 देशों में हिंदी बोली जाती है। भारत में 78 प्रतिशत जनता हिंदी बोलती है। विश्व में 64 करोड़ लोगों की मातृभाषा हिंदी है। विश्व में 20 करोड़ लोगों की दूसरी भाषा हिंदी है और 44 करोड़ लोगों की तीसरी या चौथी भाषा हिंदी है। 2015 के आंकड़ों के अनुसार हिंदी दुनिया में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा बन चुकी है। दुनिया के सभी 206 देशों में करीब 1,30,00,00,000 (एक अरब तीस करोड़) लोग हिंदी बोल रहे हैं।'[1]

हिंदी का शब्द भंडार व शब्दकोश बड़ा है। लगभग 25 लाख शब्दों की संपदा हिंदी के पास है। संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी, फ्रांसीसी, अंग्रेजी, पुर्तगाली भाषाओं के शब्दों को आत्मसात कर हिंदी विश्व की श्रेष्ठ भाषाओं की जमात में शामिल है। 'भारत के अलावा मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, गुयाना, त्रिनिदाद और टोबैगो आदि देशों में हिंदी बहुप्रयुक्त भाषा है। फिजी में हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। मॉरीशस में तो 'विश्व हिंदी सचिवालय' की स्थापना हुई है जिसका उद्देश्य ही हिंदी को विश्वस्तर पर प्रतिष्ठित करना है।'[2] नेपाल, पाकिस्तान, भूटान, बांग्लादेश, खाड़ी देशों, मध्य एशियाई देशों—रूस, यूरोप, कनाडा, अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशों में भी हिंदी का व्यापक प्रचार-प्रसार है।

अब अगर हिंदी साहित्य की बात करें तो वैश्विक साहित्य की कसौटी पर

वह खरा उतरता है। हिंदी साहित्य के यशस्वी साहित्यकारों की बहुत लंबी सूची है। परंतु यहां कुछ साहित्यकारों के नाम की चर्चा ही पर्याप्त है। कबीर, तुलसी, सूर, बिहारी, मीरा, घनानंद, भारतेंदु, प्रेमचंद, निराला, पंत, महादेवी, प्रसाद, नार्गाजुन, धूमिल, अज्ञेय, मुक्तिबोध, कमलेश्वर इनके रचित साहित्य को कोई भी विश्व स्तर का साहित्य होने से अस्वीकार नहीं कर सकता। इनके अतिरिक्त हिंदी प्रवासी साहित्यकारों का उत्कृष्ट साहित्य हिंदी साहित्य को वैश्विक परिदृश्य में लाकर खड़ा कर देता है और हिंदी भाषा व साहित्य को वैश्विक स्तर पर स्थापित करता है।

प्रवासी शब्द से प्रायः जो अर्थ ग्रहण किया जाता है वह विदेशों में रहने वाले भारतीय और प्रवासी साहित्य का अर्थ है—जो लेखन कार्य अपने घर से दूर हुआ हो यानी विदेशों में। प्रवासी साहित्य किसे मानें इस विषय पर सभी एकमत नहीं हैं। ऐतिहासिक रूप से देखें तो भारत से विदेश जाने वाले लोगों की परिस्थितियां व प्रेरणा भिन्न हैं। इनमें से एक वर्ग ऐसे भारतीयों का था जिन्हें अंग्रेज, डच व फ्रांसीसी शासक अपने-अपने गुलाम देशों में धोखे से गिरमिटिया मजदूर बनाकर ले गए थे। भारत में फिजी, सूरीनाम, मॉरीशस, त्रिनिदाद गए इन गिरगिटिया मजदूरों ने हिम्मत नहीं हारी, तमाम कष्टों, तिरस्कार, परेशानियां और शोषण सहकर भी पराई भूमि में अपनी पहचान को बनाए रखा। ये लोग अपने साथ विरासत के रूप में धर्मग्रंथ, लोकगीत, स्वभाषा, संस्कृति और परंपराओं को लेकर गए थे और तमाम प्रतिकूलताओं के बावजूद उन्होंने इन्हें सुरक्षित रखा। यही कारण है कि देश से दूर विदेशों में भारतीय भाषा व संस्कृति अक्षुण्ण रही।

दूसरे वर्ग में वे भारतीय आते हैं जो अपनी मर्जी से देश छोड़कर विदेशों में बस गए हैं। देश की आजादी से बहुत पहले ही भारतीयों ने विदेशों में जाकर बसना शुरू कर दिया था। बेशक वे विदेशों में जाकर बस गए हों पर अपनी जड़ों से नहीं कटे हैं। भारतीय संस्कार और भाषा उनकी आत्मा में रच-बस रही है। विदेशों में रहने वाले प्रवासी लेखकों ने अपनी लेखनी को माध्यम बनाकर न केवल भारतीय परिवेश, संस्कारों, यहां की मिट्टी की गंध, पर्व-त्योहारों को जीवित रखा वरन विदेशों के परिवेश, संस्कारों, समस्याओं, परिस्थितियों एवं भाषा से भी हिंदी पाठकों को रू-ब-रू करा हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप विकसित किया है।

प्रवासी साहित्य किसे कहें—इस विषय पर सभी एकमत नहीं हैं। हिंदी शब्द सागर में प्रवासी का अर्थ है 'जो देश छोड़कर बाहर बस जाए वह प्रवासी है।' आशीष कंधवे का मानना है कि 150 साल पहले जो मजदूर गए थे ज्यादातर अशिक्षित थे। उन्होंने साहित्य नहीं रचा उनके बाद की पीढ़ी ने जो विदेशों में ही पैदा हुई है; उन्होंने

हिंदी साहित्य रचा परंतु उनका जन्म भारत में नहीं हुआ है। उनके साहित्य को प्रवासी साहित्य नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि वे उस तरह भारत से नहीं जुड़े हुए जैसे कि यहां जन्मे लोग। प्रवासी का अर्थ ही यह है कि वे लोग जिनका जन्म एक देश में हुआ हो और अजीविका, शिक्षा अथवा अन्य किसी कारण से अन्य देश में रह रहे हों। जो लोग बाद में 30-40 साल पहले देश छोड़कर अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, अरब आदि देशों में गए उनका साहित्य प्रवासी साहित्य माना जाना चाहिए क्योंकि उनका जन्म भारत में हुआ है, वे अपने देश से परिचित हैं और विदेशों में प्रवास करते हुए लिख रहे हैं। तेजेंद्र शर्मा, सुषम बेदी, अर्चना पेन्यूली, उषा राजे ये सब प्रवासी साहित्यकार हैं। आशीष कंधवे उन्हें 'वैश्विक दूत' की संज्ञा देते हैं।'[3]

तेजेंद्र शर्मा जी का मानना है कि प्रथम पीढ़ी जो देश छोड़कर बाहर बस गई है वह प्रवासी है। और इस प्रथम पीढ़ी के लोग जो साहित्य-सृजन करते हैं वह प्रवासी साहित्यकार हैं। दूसरी पीढ़ी जो विदेशों में ही जन्मी है वह प्रवासी नहीं है।'[4] सत्यकेतु सांकृत प्रवासी हिंदी साहित्य को 'अमूल्य निधि' मानते हैं। वे कहते हैं कि 'साहित्य साहित्य है उसे बांटा न जाए कि यह प्रवासी साहित्य है और यह मुख्यधारा का साहित्य है। हिंदी में रचा साहित्य हिंदी साहित्य है।'[5] अपनी जन्मभूमि से दूर जो लिख रहे हैं वे प्रवासी हैं। भिखारी ठाकुर का नायक भी तो कलकत्ता जाकर ही प्रवासी हो जाता है। डॉ. कृष्ण कुमार का मत है कि घर से बाहर व्यक्ति देश के ही अन्य हिस्से में भी रहकर लिख सकता है तो उसका लेखन प्रवासी साहित्य में आना चाहिए।

दूसरा व्यक्ति घर से दूर विदेश में रहकर लिखता है तो ऐसे साहित्य को विदेशी प्रवासी साहित्य कहा जाना चाहिए। 'विदेशी प्रवासियों के हिंदी साहित्य को 'विदेशी प्रवासी हिंदी साहित्य' माना जाना चाहिए।'[6] तेजेंद्र शर्मा मानते हैं कि 'लेखक प्रवासी हो सकता है मगर उसका साहित्य कैसे प्रवासी साहित्य हो सकता है।'[7]

तेजेंद्र शर्मा जी मानते हैं कि 'दिल में जब दर्द हो तो लिखा जाता है। 25 साल में दुनिया 200 साल आगे बढ़ गई है। साहित्य हारे आदमी के साथ खड़ा नजर आता है। इंसान की तकलीफों, परेशानियों को लिखना साहित्यकार का दायित्व है।'[8] तेजेंद्र शर्मा मानते हैं कि प्रवासी साहित्यकार के विदेश में जीवन के तीन पड़ाव आते हैं—पहला, जब वह अपने देश से दूर जाकर उसे याद करते हुए लिखता है। दूसरा, जब वह विदेशी समाज को देखता है और समझने का प्रयास करता है और तीसरा पड़ाव जब वह विदेशी परिवेश को समझने में पूर्णतः सक्षम हो जाता है तो उसके

साहित्य में नई दुनिया के दर्शन होते हैं।

भारतीय मूल के विदेशों में रहने वाले लोगों के रचनात्मक लेखन को 'प्रवासी साहित्य' माना जाता है और जिन लेखकों ने हिंदी को केंद्र में रखकर या माध्यम बनाकर लेखन कार्य किया है वे 'प्रवासी हिंदी साहित्यकार' हैं। राजेंद्र यादव लंबे समय तक इसे 'नॉस्टेल्जिया' का साहित्य कहते रहे हैं। यदि प्रवासी साहित्य में 'नॉस्टेल्जिया' है तो वह स्वाभाविक है। कमलेश्वर इस विषय पर मानते हैं कि "नॉस्टेल्जिया या स्मृति कोई गलत मूल्य नहीं है। 'नॉस्टेल्जिया' जो लिट्रेचर है या जिसमें 'नॉस्टेल्जिया' है, स्तुति है, यादें हैं वे अपने आप में बहुत गहरी भी होती हैं और कारगर भी। खासतौर पर वो लोग जो भारत छोड़कर दूसरे देशों में चले गए हैं उन्हें तो निश्चित रूप से अपने देश की, अपने प्रांत की, अपने गांव की, अपने घर की याद सताती है। कितने लोग आते हैं अपने पुराने गांव का नाम सुनकर। यहां हमारे पूर्वज रहते थे, ये पूर्व स्मृति ही नॉस्टेल्जिया है। उसके तहत वे लोग उसको याद करते हैं। वह उनके साहित्य में दिखाई भी पड़ता है। ये कोई गलत बात नहीं है।'[9] कमलेश्वर मानते हैं कि प्रवासी साहित्यकारों ने साहित्य की अपनी परंपरा तैयार की है। हिमांशु जोशी भी इनके साहित्य में 'नॉस्टेल्जिया' का होना स्वाभाविक मानते हैं। 'लोग अपने रीति-रिवाजों से, अपने वतन से, अपने इलाके से बिछड़कर दूर चले जाते हैं तो अपना गांव, अपने लोग, अपना प्रदेश याद आ ही जाते हैं।'[10] वे मानते हैं कि प्रवासी साहित्यकार जो लिख रहे हैं चौंकाने वाला है और प्रवासी हिंदी साहित्य के बिना हिंदी साहित्य का इतिहास अधूरा है।

प्रवासी साहित्य के महत्व को देखते हुए डॉ. रामदरश मिश्र कहते हैं, 'प्रवासी साहित्य ने हिंदी को नई जमीन दी है और हमारे साहित्य का दायरा दलित विमर्श और स्त्री विमर्श की तरह विस्तृत किया है।'[11] डॉ. मिश्र ने प्रवासी साहित्य को बारीकी से देखा-परखा है। डॉ. कमल किशोर गोयनका भी प्रवासी साहित्य के योगदान को देखते हुए लिखते हैं कि—'वह हिंदी साहित्य की एक सशक्त धारा बन चुका है।'[12] विदेशों में रहकर हिंदी भाषा की सेवा करने वाले महत्वपूर्ण हिंदी प्रवासी साहित्यकारों में प्रमुख हैं—अमेरिका की अलका शर्मा, अनिल कुमार प्रभा, उषा प्रियंवदा, सुषम बेदी, सुधा ओम ढींगरा, सोमावीरा, पुष्पा सक्सेना, रचना श्रीवास्तव, उमेश अग्निहोत्री, सुदर्शन प्रियदर्शिनी तथा सुनीता जैन। ब्रिटेन के गौतम सचदेव, तेजेंद्र शर्मा, जकिया जुबैरी, अचला शर्मा, कादंबरी मेहरा, दिव्या माथुर, गोविंद शर्मा, उषा राजे शर्मा, शैल सक्सेना। कनाडा के प्रो. अश्विनी गांधी, सुरेश कुमार गोयल, डॉ. शैलजा सक्सेना, सुमन घई। खाड़ी देशों के अशोक कुमार श्रीवास्तव, उमेश शर्मा,

कृष्ण बिहारी, दीपक जोशी, संयुक्त अरब अमीरात की पूर्णिमा वर्मन, स्वाति भालोटिया; कुवैत की दीपिका जोशी; मॉरीशस के अभिमन्यु अनत, सुखराम, अमरजीत कौर, पं. कमला प्रसाद मिश्र आदि की सूची बहुत लंबी है। यह सभी साहित्यकार साधुवाद के पात्र हैं। अपने देश, अपनी जमीन से दूर रहकर भी मातृभाषा के प्रति ईमानदारी से अपने कर्तव्य का निवर्हन कर रहे हैं। हमारे ये प्रवासी लेखक भी भारतीथ समाज के हिस्से हैं—'जहां अपने विकासमान व्यक्तित्व के साथ एक नए भविष्य के उत्ताल की आकांक्षा लिए वे विदेशों में जा बसे। अपने समाज की धरती से नितांत भिन्न नए प्रकार की सुख-सुविधाओं के बीच अस्मिता के सवाल समय पर उन्हें उद्वेलित करते हैं और 'तन के सौ सुख सौ सुविधा में मेरा मन बनवास दिया' को शिद्दत से महसूस करते हैं। जी हां, यह मेरा-आपका कथन नहीं है, यह उनकी रचनाओं का स्वर है। उनकी कविताओं में; कहानियों में यह बनवास की छटपटाहट है और सांस्कृतिक द्वंद्व का कहीं स्वीकार्य है तो कहीं विस्फोट है।'[13]

यदि प्रवासी कथा-साहित्य की बात की जाए तो यहां कथा लेखन की एक सुदीर्घ और सुगठित परंपरा और समृद्ध कथा संसार है। वैसे भी अब कथा-साहित्य हिंदी साहित्य में अपनी मजबूत पहचान बना चुका है। 'बीसवीं शताब्दी का अंत होते-होते कथा-साहित्य न केवल कविता के समकक्ष हो गया है, बल्कि कई मायने में उससे आगे भी निकल गया है।'[14] प्रवासी कथा-साहित्य में नएपन का बोध होता है क्योंकि प्रवासी कथा-साहित्य में अन्य देशों के परिवेश, संघर्ष तथा विशेषताओं का अंकन देखने को मिलता है। प्रवासी कथाकारों ने अपने लेखन द्वारा एक भिन्न समाज से परिचय करवाया है। प्रवासी के लिए अन्य देश की संस्कृति में रच-बस जाना आसान नहीं है। उनकी जड़ें अपने देश व भाषा से सदैव जुड़ी रहती हैं। विदेशों में रहने के बावजूद उनका मन भारतीय है और यह उनके कथा-साहित्य में परिलक्षित होता है।

प्रवासी कथाकारों की बात की जाए तो एक लंबी सूची है साहित्यकारों की जो अपनी कथा-साहित्य के माध्यम से लगातार हिंदी कहानियों को समृद्ध कर रहे हैं। सुषम बेदी की 'संगीत पार्टी', 'अवसान', सुधा ओम ढींगरा का कहानी-संग्रह *कौन-सी जमीन अपनी*, शैल अग्रवाल की 'वापसी', गौतम सचदेव की 'आकाश की बेटी', पूर्णिमा वर्मन की 'यूंही चलते हुए', अचला शर्मा की 'चौथी ऋतु', जकिया जुबैरी की 'मारिया', दिव्या माथुर की '2050', सुदर्शन प्रियदर्शिनी की 'धूप', रचना श्रीवास्तव की 'पार्किंग', उषा राजे सक्सेना की बीमा, पुष्पा सक्सेना की 'विकल्प कोई नहीं', तेजेंद्र शर्मा की 'देह की कीमत', 'पासपोर्ट के रंग', 'इंतजाम', उमेश अग्निहोत्री की 'क्या हम दोस्त नहीं रह सकते', सुमन घई की 'स्मृतियां' तथा उषा प्रियंवदा के उपन्यास *अंतर्वंशी*, *नदी*, *शेष यात्रा*, सुषम बेदी का *हवन*, दिव्या माथुर का *शाम भर बातें*, सुधा ओम ढींगरा का *नक्काशीदार कैबिनेट* इत्यादि।

यह सत्य है कि मनुष्य जब अलग-अलग स्थानों पर जाता है तो उसकी संवेदना का विस्तार भी होता है। साहित्यकार पर तो इसका और अधिक प्रभाव पड़ता है। वह नई अनुभूतियों, नई संवेदनाओं, नए परिवेश को साहित्य की शक्ल में प्रस्तुत करता है। हावर्ड फास्ट के अनुसार, 'बाह्य यथार्थ के संपर्क में आने के साथ-साथ रचनाकार संपूर्ण बाह्य यथार्थ को अपने मानस का अंग नहीं बनाता। वह चुनाव करता है। दूसरे बाह्य यथार्थ ज्यों के त्यों उसके मानस में अंकित नहीं होते, रचनाकार का सजग मानस उसे अपने अनुरूप नई शक्ल देता है। इसके अनंतर रचनाकार की भावना, कल्पना, प्रतिभा और शिल्प सब अपनी-अपनी भूमिका अदा करते हैं, और तब रचना सामने आती है। रचना बाह्य यथार्थ के चुने गए तथा नवीन आकृति में ढाले गए अंशों, अनुभवों तथा संवेदनाओं का छना हुआ रूप है। उसमें मनुष्य के संपूर्ण अर्जित संस्कारों, परंपराओं एवं विवेक का योगदान होता है।'[15]

'पासपोर्ट का रंग' कहानी प्रवासी के दर्द और अपने देश के प्रति प्रेम को प्रकट करती है। इस कहानी की शुरुआत में गोपाल दास त्रिखा इंगलैंड की महारानी के प्रति निष्ठा की प्रतिज्ञा करते हुए मन ही मन खून के आंसू रो रहे होते हैं। उनका भारतीय मन यह गवाही नहीं देता है कि भारत को गुलाम बनाने वाले अत्याचारी गोरों के प्रति वे निष्ठा निभाएं। वे अपने बेटे से कहते हैं—'मेरे लिए ब्रिटेन की नागरिकता लेने से मर जाना कहीं बेहतर है। मैंने अपनी सारी जवानी इन गोरे साहबों से लड़ने में बिता दी। जेलों में रहा।'[16] उनका इकलौता बेटा ब्रिटेन आकर बस गया था और यहीं की नागरिकता ले चुका था। वे अकेले भारत में थे। अकेलेपन से घबराकर बेटे के पास आ गए थे और बेटा उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें ब्रिटेन की नागरिकता दिलवा देता है। पुत्र इंद्रेश का अपना तर्क है—'ब्रिटेन पासपोर्ट के लिए लोग दो-दो लाख रुपया देते हैं रिश्वत में तब कहीं जाकर हासिल कर पाते हैं। आपको मुफ्त में मिल रहा है तो आप इसकी कदर नहीं करते। ब्रिटेन का पासपोर्ट हो तो आपको किसी भी देश का वीजा लेने की जरूरत नहीं पड़ती। जब दिल किया, जहां जाना हो, बस हवाई जहाज की टिकट लीजिए और घूम आइए वहां।'[17] इंद्रेश की पत्नी सरोज को भी लगता है कि इस प्रकार गोपालदास की बिना इच्छा के नागरिकता नहीं बदलवानी चाहिए थी। गोपालदास को जीवन में दो बार प्रवास की पीड़ा झेलनी पड़ी थी। पहले लाहौर से दिल्ली आकर बसने पर, दूसरी बार भारत से

ब्रिटेन बसने पर। तमाम सुख-सुविधाओं के बावजूद वे वापस भारत की नागरिकता प्राप्त करना चाहते थे। एक बार भारत के प्रधानमंत्री द्वारा दोहरी नागरिकता के एलान की खबर सुनकर उनकी यह इच्छा वेग तोड़कर बहती नदी के समान हो जाती है। परंतु राजनेताओं के वादे तो वादे होते हैं। गोपालदास का दोहरी नागरिकता के लिए भारत भवन के चक्कर लगाना, दोस्तों से केवल इसी विषय पर चर्चा करना उनकी उस कसक को बयां करती है जहां व्यक्ति अपनी जड़ों से कटकर अपने ही देश का नागरिक नहीं रह पाता और इस सच्चाई को स्वीकार भी नहीं करना चाहता है। भारत के लिए वीजा एप्लाई करना उन्हें शर्मनाक लगता है। 2 वर्ष वे दोहरी नागरिकता के वादे के पूरा होने का इंतजार करते हैं। वे सोचते हैं 'केवल पासपोर्ट का रंग नीले से लाल होने पर इंसान के भीतर कितनी जद्दोजहद शुरू हो जाती है।'[18] कहानी का अंत बहुत ही मार्मिक है। हाई कमीशन से निराश लौटकर गोपालदास अवसादग्रस्त हो जाते हैं। वे समझ जाते हैं कि दोहरी नागरिकता का ऐलान प्रवासियों को खुश करने का एजेंडा मात्र है। पुनः भारत की नागरिकता प्राप्त करने का सपना लिए ही वे परलोक सिधार जाते हैं। 'गोपालदास जी एकटक छत को देखे जा रहे थे। उनके दाएं हाथ में लाल रंग का ब्रिटिश पासपोर्ट था और बाएं हाथ में नीले रंग का भारतीय पासपोर्ट। उन्होंने ऐसे देश की नागरिकता ले ली थी जहां के लिए इन पासपोर्ट की जरूरत नहीं थी। स्टार न्यूज पर नए प्रधानमंत्री घोषणा कर रहे थे कि अब 11 देशों में बसे सभी भारतीयों को दोहरी नागरिकता प्रदान की जाएगी।'[19] कहानी का अंत गोपालदास जैसे प्रवासी भारतीयों के प्रति करुणा पैदा करता है जो देश छोड़कर विदेशों में आ बसते हैं। परंतु उनकी आत्मा अपने ही देश में छूट गई है।

'कब्र का मुनाफा' कहानी पूंजीवाद की प्रवृत्ति उपभोक्तावाद तथा बाजारबाद के प्रभावों से संवेदनहीन होती मनुष्यता की कहानी है। यह बाजारवादी समय की तस्वीर पेश करती है। अमीर जीते जी तो गरीबों से घृणा करते ही हैं वरन मरने के बाद भी नहीं चाहते कि किसी गरीब की कब्र उनकी कब्र के पास हो। पूंजीवाद असमान पूंजी के वितरण पर टिका है। गरीबों के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है। यह बाजारवादी समय अमीरों की शानो-शौकत का सारा इंतजाम रखता है और अब मरने के बाद भी उनकी उच्चता ग्रंथि को पोषित करने का इंतजाम भी बाजार ने कर दिया है। इस कहानी में दिखाया है कि अब अमीरों के मरने के बाद पॉश इलाके में आलीशान कब्र बुक की जा सकती है। यानी मरने के बाद भी आलीशान तरीके से कब्र में दफन हुआ जा सकता है। यह ब्रिटेन के घोर बाजारवादी परिवेश को, मृत्यु के बाद के इंतजामों को बाजार के हाथ सौंपने के नए विचार व संवेदनाओं को चित्रित करती है।

यह कहानी खलील जैदी और नजम जमाल के नए बिजनेस शुरू करने के विचार से शुरू होती है। लंदन के फाइनेंशियल सेक्टर में खलील एक बड़ा नाम है। नजम खलील को बताता है कि उसके जैसे अमीर लोगों ने कब्र बुक कर ली है। 'आपने कार्पेंडर्स पार्क के कब्रिस्तान में अपनी और भाभी जान की कब्र बुक करवा ली है या नहीं? देखिए उस कब्रिस्तान की लोकेशन, उसका लुक और माहौल एकदम यूनीक है।'[20] जिंदा गरीबों के लिए चाहे रहने को दो गज जमीन न हो पर वे अपने मरने का इंतजाम भी फाइव स्टार जैसा चाहते हैं। और तो और, ये लोग धर्म, नस्ल, जाति के आधार पर भी अलग कब्रिस्तान चाहते हैं। जीते जी तो भेदभाव रखा ही मरकर भी उसे बनाए रखना चाहते हैं। 'यार ये साला कब्रिस्तान शिया लोगों के लिए एक्सक्लूसिव नहीं हो सकता क्या?...। वरना मरने के बाद पता नहीं चलेगा कि पड़ोस में शिया है या सुन्नी या फिर गुजराती टोपी वाला। यार, सोचकर ही झुरझुरी महसूस होती है। मेरा बस चले तो एक कब्रिस्तान बनाकर उस पर बोर्ड लगा दूं–शिया मुसलमानों के लिए रिजर्व्ड।'[21] बाजार की लच्छेदार भाषा का प्रलोभन विशेष दर्शनीय है कि वे मौत के बाद इंसान का इतनी भव्यता के साथ अंतिम संस्कार करेंगे कि कोई भी एक भारी रकम चुकाकर मर कर जीना चाहेगा। जैसे लाश को नहलाना, नए कपड़े पहनाना, राल्स रॉयस में लाश की सवारी और कब्र पर संगमरमर का पताक आदि। यदि किसी की एक्सीडेंट में मृत्यु हो जाए तो जैसे आग से जलकर मर जाए तो लाश का ऐसा मेकअप किया जाएगा कि वे एकदम जवान और खूबसूरत दिखे।

नजम की पत्नी आबिदा है और नादिरा खलील जैदी की। दोनों का ही व्यवहार अपनी पत्नियों से अधीनस्थों जैसा है जो उनकी सल्तनत में रहती हैं और वे चाहते हैं कि वे दोनों भी अन्य कर्मचारियों की भाति उनके अनुसार ही जिएं। उन्हें उनका खुदपरस्त होना, प्रश्न करना, जवाब देना कतई बर्दाश्त नहीं। कहानी पितृसत्ता पर भी व्यंग्य करती है। विदेशों में भी पुरुष समाज की सोच वही है जैसी हिंदुस्तान में। दोनों के पतियों के पास उनके लिए समय नहीं है। जो पैसा देते हैं उसका पूरा हिसाब रखते हैं जैसे पत्नियां नहीं मुलाजिम हों। वे नाम को घर की मालकिनें हैं। दोनों जताने से बाज नहीं आते कि वे घर के मालिक हैं। नादिरा उच्च शिक्षित है परंतु खलील का झूठा पौरुष यह गवारा नहीं करता कि उसकी बीवी नौकरी करे। नादिरा द्वारा उत्पीड़ित महिलाओं की सहायता करना भी उसे पसंद नहीं है। नादिरा जानती है खलील की परेशानी वह है—कंट्रोल करने की बीमारी। वह सभी कुछ अपने कंट्रोल में रखना चाहता है। यदि वह स्वतंत्र रूप से अपने विचार रखना चाहे तो

जैसा कि वह परवेज की पार्टी में लोकतंत्र पर अपने विचार रखती है तो खलील उसे तलाक की धमकी दे देता है। वह एक नकली मुस्कराहट चिपका कर रहती है, चेहरे पर। खलील द्वारा कब्र बुक करने का विचार नादिरा को कतई पसंद नहीं आता, वह कहती है, 'खलील, आप जिंदगी भर तो इंसान को पैसों से तौलते रहे। क्या मरने के बाद भी आप नहीं बदलेंगे। मरने के बाद तो शरीर मिट्टी ही है, फिर मिट्टी का नाम चाहे अब्दुल हो, नादिरा या फिर खलील।'[22] खलील का उत्तर उसकी सामंतवादी सोच को दिखाता है, 'मैं नहीं चाहता कि मरने के बाद हम किसी खानसामा, मोची या प्लंबर के साथ पड़े रहें। ... भई, अपने जैसे लोगों के बीच दफन होने का सुख और ही है।'[23]

कहानी का अंत उसके आरंभ में खलील और नजम के नए बिजनेस शुरू करने की समस्या से होता है और उसका अंत करता है क्योंकि अब उन्हें नया आइडिया मिल चुका है जो लाभकारी है यानी कब्रों की बुकिंग का क्योंकि इसमें बहुत मुनाफा है। नादिरा खलील द्वारा बुक कराई कब्रें कैंसिल कर देती है और बताती है, 'आपने साढ़े तीन सौ पाउंड एक कब्र के लिए जमा करवाए हैं। यानी कि दो कब्रों के लिए सात सौ पाउंड। और अब इन्फ्लेशन की वजह से उन कब्रों की कीमत हो गई है ग्यारह सौ पाउंड यानी कि आपको हुआ है कुल चार सौ पाउंड का फायदा, बस एक साल भर में। उसने नजम की तरफ देखा। नजम की आंखों में भी वही चमक थी। नया धंधा मिल गया था।'[24]

'देह की कीमत' कहानी संपन्न घरों में निरंतर बढ़ती भावनात्मक विपन्नता की कहानी है। यह कहानी छीजते रिश्तों की, खोखले संबंधों की, खून के रिश्तों में घुलती अर्थ संचालित सच्चाइयों की, पैसे को ही सब कुछ मानने की सोच, लगातार संवेदनहीन होते समाज की सच्चाई बयां करती है। पारिवारिक संबंधों की चुकती उष्मा को, आत्मीयता के ह्रास को दिखाती है। इस कहानी की शुरुआत होती है परमजीत के वैधव्य की घटना से और ससुराल वालों के तानों, अमानवीय व्यवहार से। परमजीत की शादी हरदीप से हुई थी। हरदीप भारत में रहने वाले उन युवकों का प्रतिनिधित्व करता है जो किसी भी तरह विदेश जाकर ढेर सारा पैसा कमाना चाहते हैं। 'उसके ताऊजी जब से आस्ट्रेलिया जाकर बस गए थे...। तब से हरदीप के मन में बस एक ही साध थी कि कहीं विदेश में जाकर ही बसना है.... उसे तो बस किसी भी तरह विदेश जाना था बस...। वहां जाना था...। पैसा कमाना था और ऐश की जिंदगी जीनी थी।'[25] हरदीप अपनी इच्छा पूरी भी कर लेता है, इन-लीगल तरीके से जापान पहुंच जाता है। परमजीत नहीं चाहती कि उसका पति इन-लीगल

तरीके से जापान जाए तो वो भी पुरुष होने का अधिकार उस पर जताता है क्योंकि परमजीत उसकी पत्नी है, एक औरत है तो उसे तो पति की बात माननी ही होगी। वह पत्नी को इस काबिल नहीं मानता कि उसे अपने फैसलों में भागीदार बनाए। 'ओये, तुम जनानियों को मर्दों की बात में दखल नहीं देना चाहिए। ... तुम अपना घर संभालो... बस।... पैसे कमाना हम मर्दों का काम है। वोह हमारे ऊपर ही छोड़ दो।'[26] परमजीत उच्च शिक्षित थी परंतु पति की नजरों में वह केवल घर का काम करने लायक थी क्योंकि उसका सामंती दृष्टिकोण स्त्री को रसोई के अलावा और किसी काम के लायक नहीं समझता था।

अपने देश के अच्छे-भले घरों के नवयुवक जो साधन संपन्न हैं परंतु फिर भी विदेशों का इंद्रजाल उन्हें अपनी ओर खींचता है। यही स्थिति हरदीप की थी। 'खाते-पीते घर का 'काका', जापान में अवैध काम करने को अभिशप्त था...। वहां वो कुली भी बन जाता था तो कभी रेस्टोरेंट में बर्तन भी मांज लेता था..। हर वो काम जो हरदीप अपने देश में किसी भी कीमत पर नहीं करता, जापान में सहर्ष कर लेता था। कारण?... झूठी शान के अतिरिक्त क्या हो सकता है...कि लड़का जापान में काम करता है।'[27]

जापान में काम करते हुए एक दिन हरदीप की मौत हो जाती है। उसके साथी आपस में तीन लाख रुपये इकट्ठा करके उसकी लाश को भारत भेजने का प्रबंध करते हैं परंतु भारतीय दूतावास का एक अधिकारी नवजोत उन्हें सलाह देता है कि हरदीप की लाश का क्रियाकर्म जापान में कर देना चाहिए और तीन लाख का ड्राफ्ट उसकी पत्नी के नाम बनवा देना चाहिए। परमजीत के ससुर दारजी ही उसके ससुराल में एकमात्र व्यक्ति हैं जिन्हें सही मायनों में इनसान कहा जा सकता है। एक केवल वही अपनी बहू के साथ खड़े नजर आते हैं। वह अपनी बहू के भविष्य को देखते हुए यह फैसला लेते हैं कि उनके बेटे का क्रियाकर्म जापान में ही कर दिया जाए और तीन लाख का ड्राफ्ट बहू के नाम भेज दिया जाए।

हरदीप की मां तथा भाई का चरित्र मानवता और रिश्तों को शर्मसार करने वाला है। मां बेटे की मौत का जिम्मेदार बहू के भाग्य को मानती है तो देवर इस अवसर को कैश करने के लिए खुद जापान जाने का सपना पूरा करना चाहता है। 'सारे हरदीप की मां अपने बेटे के कफन के बदले तीन लाख की रकम चाहती है। पैसे कल दी आई कुड़ी को क्यों मिले, पुत्तर तो हमारा गया है।'[28] यह संवाद रिश्तों के संवेदनहीन होने का प्रमाण है। कहानी बिना शोर-शराबे के चरमबिंदु पर पहुंच जाती है। परमजीत सब सुनकर अंत में पुरुष सत्ता की रुढ़िवादी सोच के खिलाफ

था। यहां बहन-भाई भी परायों जैसा व्यवहार करते हैं। गुड्डो की छोटी बहन पिंकी गुड्डो और उसके बेटे को अमेरिका बुलाती है किंतु यहां लाकर उनका शोषण करती है। दुकान में सेल्सगर्ल का काम कर थककर गुड्डो जब घर आती है तो छोटी बहन पिंकी उससे अपने घर का सारा काम कराकर उसका शोषण करती है। एक दिन विधवा गुड्डो और उसके बेटे राजू को घर से बाहर निकाल देती है। पराए देश में अपनी बहन के इस अमानवीय व्यवहार से गुड्डो सकते में रह जाती है। बाद में मंझली बहन के घर जाकर रहती है तो वह बहुत व्यापारिक तरीके से उससे आश्रय के बदले तीन सौ डॉलर वसूलती है। ये सब घटनाएं विदेशों में लगातार छीजते संबंधों को प्रकट करती हैं। विदेशी धरती पर अपने लोग भी वहां की संस्कृति के अनुसार पूर्णतः व्यावसायिक व व्यापारिक रिश्ते निभाते हैं। ऐसे समय में बार-बार अपने वतन और लोगों की याद आना स्वाभाविक है। मंझली बहन गीता का पति गुड्डो की मजबूरी को फायदा उठाना चाहता है। 'गीता के घर गुड्डो को चैन-आराम कतई नहीं था। मेहमानों जैसी ही पड़ी थी। राजू को पढ़ने की भी सुविधा नहीं थी, कोई निश्चित कोना तो उनके पास था नहीं। गुड्डो सोचने लगी तीन सौ डॉलर तो देती हूं ऊपर से घर भी अपने जैसा नहीं।'[34]

इन परिस्थितियों में गुड्डो अमेरिका में अपने पैर जमाने का निर्णय लेती है और 45 वर्ष की उम्र में पुनः एकाउंट्स की पढ़ाई कर एक अच्छी नौकरी जुटाने का प्रयास करती है। वह अपने बाल कटाकर और पर्सनलिटी डेवलपमेंट कोर्स कर स्वयं को अमेरिकी जीवन पद्धति में ढालने का प्रयास करती है और सफल भी होती है। बाद में वह अपनी दोनों बेटियों और दामादों को भी अमेरिका लाकर सैटल कर देती है। देश की याद आने, यहां के पराए लोग और परिवेश में स्वयं को ढालने की चुनौती को स्वीकार कर सफल होने के बाद भी गुड्डो वापस भारत जाकर नहीं बसती। यही विदेशों में जाकर बसे प्रवासियों का सच है। एक बार विदेश में बसकर पुनः अपने देश में लौटना मुश्किल हो जाता है। हवन की सुगंध से मानो गुड्डो भारत से जुड़े रह कर देना चाहती है, अमेरिकी परिवेश के कल्मष को समाप्त कर देना चाहती है।

अमेरिकी समाज में मनुष्य का जीवन मशीन बनकर रह गया है। इस देश में अपने भाई-बहनों से भी व्यक्ति बिना अपॉयंटमेंट के नहीं मिल सकता। गुड्डो को यह जीवन नीरस प्रतीत होता है। वह सोचती है—'जिंदगी को बेहतर और सुखकर बनाने के कितने ही कृत्रिम साधनों को इकट्ठा कर रहा है सारा का सारा समाज। सारी उम्र उन सुख के साधनों को जुटाने में ही खर्च हो जाती है। हम काम को आसान बनाने के लिए नई से नई मशीन ईजाद और फिर उस मशीन को हासिल करने के

लिए खुद पैसा कमाने के लिए मशीन बन जाना। बस, एक मशीन से दूसरी मशीन के दौर से गुजरने में ही जिंदगी की मशीन के कलपुर्जों का धीरे-धीरे क्षय हो जाना''[35] मनुष्यों का यंत्रवत होना इस परिवेश का यथार्थ है।

हवन उपन्यास में उन नवयुवकों का वर्णन भी सुषम जी करती हैं जो भारत से बड़ी-बड़ी डिग्रियां लेकर अमेरिका आते हैं। अपने सपनों को सच करने परंतु अपनी योग्यता के अनुसार काम न पाकर वेटर, टैक्सी ड्राइवर आदि बनने को मजबूर हो जाते हैं। 'सरवाइव' करने के लिए छोटे-छोटे काम करते हैं। इस उपन्यास का अरुण भी ऐसा ही नौजवान है। इमिग्रेशन वाले वर्क परमिट न होने के कारण उसे जेल में डाल देते हैं। उसकी गर्लफ्रेंड जूडी उसे छुड़ाती है। अरुण ग्रीन कार्ड पाने के लिए उससे विवाह कर लेता है परंतु यह विवाह एक व्यावसायिक समझौता भर है। अपने वैवाहिक जीवन के बारे में वह गुड्डो को बताता है। 'बहुत मुश्किल है जवाब देना। सभी कुछ बेमानी सा लगता है अपने अपार्टमेंट में। हर चीज वहां जूडी के मन-मुताबिक है। मैं जैसे मन-माफिक उसकी एक चीज हो जाता हूं।'[36]

उषा प्रियंवदा का उपन्यास *अंतर्वंशी* भी अमेरिका में बसे भारतीयों की पहचान कराता है। इस उपन्यास में भारत से अमेरिका आकर बसे भारतीयों के संघर्ष, उनकी पीड़ा तथा भारत से उनके जुड़ाव को दिखाया गया है। इस उपन्यास में स्त्री के स्वातंत्र्य और विवाह संस्था पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं। बनारस की रहने वाली चुनमुन व वनश्री बांसुरी तथा वाना तक का सफर एक अस्थायी परिवेश की लड़की का दुनिया की सबसे शक्तिशाली देश की नागरिक में ढलने का रूपांतरण भूमंडलीय परिवेश में व्यक्ति के धीरे-धीरे पूरी तरह ढल जाने का बोध कराता है।

भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय अपना देश छोड़ सपनों के नगर अमेरिका जाने की प्रबल चाहत रखते हैं। वे मानते हैं कि अमेरिका उनके सपनों को हकीकत में बदल सकता है। वहां जाकर अपने सपनों को पूरा करने की हसरत और उन स्वप्नों को पूरा न होने की कसक की बुनावट इस उपन्यास का कथ्य है। इस उपन्यास में नए सिरे से अमेरिका में बसे भारतीय समाज के अंतर-बाह्य का गहरा परिचय दिया गया है। यहां का जीवन मंत्र है—'खूब कमाओ, खूब उड़ाओ, यह एक ऐसा समय है, जहां अधिक से अधिक मेहनत करके अधिक से अधिक कमाना जीवनमंत्र है।'[37] यह सोच भोगवाद को बढ़ावा देती है। बनारस की वनश्री अमेरिका में वाना बन जाती है। अब वह पूरी तरह वहां के रंग में रंग चुकी है। बनारस की चुनमुन का अमेरिका में जाकर केवल नाम ही नहीं, पहनावा, भाषा भी बदल गई है। 'अब इस समय अपनी एजेंसी की यूनीफार्म पहने थी, काली स्कर्ट,

सफेद ब्लाउज। एकदम कटे बाल, बाल तो उसके बनारस में भी छोटे थे, जैसे लंबी बीमारी के बाद झड़ जाते हैं। ये बाल सुरुचि से कटे और बने थे। चेहरा बना-ठना, एक मुखौटा सा, पलकों पर हल्का सा रंग, हल्की भौहें।''[38] अमेरिका की संस्कृति के संपर्क में आकर वाना वाइन भी लेती है और क्रिस्टीन के साथ समलिंगी संबंध भी बनाती है, बेशक यह उसका पहला और अंतिम अनुभव होता है। इस उपन्यास में वाना और राहुल की प्रेम कथा भी है।

उषा प्रियंवदा का *शेष यात्रा* उपन्यास भी अमेरिकी परिवेश में रहती स्त्री की नियति और साहस की कथा कहता है। इस उपन्यास की नायिका अनु के भीतरी और बाहरी संघर्ष को उषा जी ने अत्यंत संवेदनशीलता से बुना है। अनु अपने पति के साथ अमेरिका आती है और पति की इच्छा पर स्वयं को अमेरिकी परिवेश में ढलती है। नाना प्रकार के द्वंद्वों से टकराती है। पति प्रणव द्वारा ठुकराए जाने पर साहस से काम लेती है और दीपंकर के साथ जुड़कर नवजीवन की शुरुआत करती है।

भानुमति नागदान की कहानियों में मॉरीशस के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन की स्थितियों व विसंगतियों को स्पष्ट देखा जा सकता है। उनकी कहानियां मनुष्य के जीवन की विसंगतियों, विडंबनाओं, द्वंद्वों एवं संघर्षों का चित्रांकन करती हैं। 'मिनिस्टर' कहानी में वे राजनीतिक हथकंडों, खोखले सम्मान की रक्षा व राजनीतिक विशेषताओं का अंकन करती है। 'एक घंटे का सवाल' में वे अन्यायपूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं पर व्यंग्य करती हैं इसे पढ़कर पाठकों में भी आक्रोश का भाव पैदा होता है। 'एम.बी.ई.' कहानी बुढ़ापे की दयनीयता व असहायपन को उकेरती है। वृद्धों के प्रति नई पीढ़ी की संवेदनहीनता को बहुत प्रभावशाली ढंग से यह कहानियां कहती हैं। 'नक्षत्र मिला दीजिए' कहानी में पंडित जी लालच में हर किसी के न मिलने वाले नक्षत्र भी मिला देते हैं। यह कहानी अंधविश्वास में डूबे समाज पर तंज कसती है। 'पार्टी' कहानी में भानुमति जी भारतीय परिवारों पर पश्चिमी संस्कृति के प्रभावों को दिखाती हैं। पाश्चात्य संस्कृति की चपेट में आकर भारतवंशी अपने धर्म, सांस्कृतिक मूल्यों का परित्याग करते जाते हैं। अपनी कहानियों के माध्यम से भानुमति जी आधुनिकता के साथ-साथ अपनी परंपराओं व मूल्यों से जुड़े रहने पर बल देती हैं।

दिव्या माथुर का उपन्यास *शाम भर बातें* कुछ घंटों की पार्टी के माध्यम से इंगलैंड में बसे प्रवासियों के दोगले चेहरों को बेनकाब करता है। इस पार्टी में हरेक शख्स दो तरह के चरित्रों को जी रहा है। एक वो जैसा हकीकत में है पर उसे झूठ के मुखौटे में छिपाकर रखता है। और दूसरा नकली चेहरा लगाकर सबसे मिलता है।

उपन्यास एक ऐसे समाज से मिलवाता है जहां सब कुछ नकली है ये चेहरे भी, भावनाएं भी और संवेदनाएं भी। अगर कुछ है तो छद्म संसार है जिसमें केवल मुखौटों का राज है। इंगलैंड की भूमि पर एक शाम की पार्टी के द्वारा लेखिका *शाम भर बातें* की भावभूमि गढ़ती है।

उपन्यास का प्रारंभ होता है मीता और मकरंद (मैक) की शादी की बीसवीं वर्षगांठ पर दी जा रही पार्टी से। मीता के माध्यम से लेखिका उच्च-मध्य वर्ग के ऐसे लोगों की मानसिकता को अनावृत करती है जो वर्षों से इंगलैंड रह रहे हैं और आर्थिक रूप से बेहतर स्थिति में हैं पर भीतर से खाली, खोखले, संकीर्ण सोच के हैं। मीता अपनी हैसियत से ज्यादा होने का दिखावा करती है। इस पार्टी के लिए 'मीता ने जमीन-आसमान एक कर दिया था, पार्टी की सफलता पर टिकी थी उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा'[39] झूठी प्रतिष्ठा तथा स्टेटस दिखाने के लिए मीता ने अपनी पार्टी में कुछ गोरे मेहमान भी बुलाए थे। वह जानबूझ कर गोरी चमड़ी वाली लूसी को नौकरानी रखे हुए थी और पार्टी में सारे काम उससे करवा रही थी अपने अहम की तुष्टि के लिए। 'लूसी यू स्टे विद मी, ओके? प्रिया विल मैनेज द किचन' मेहमानों को भी पता लगे कि मीता के घर में एक गोरी मेड के अलावा एक इंडियन नौकरानी भी थी।[40] मीता हर मेहमान के उपहार को उसके मूल्य के आधार पर आंकती है, 'आपा के हाथ में एक बड़ा सा रंग-बिरंगा पार्सल देखकर मीता के कलेजे में ठंडक पड़ी। उसे लगा कि इस पार्सल के अंदर अवश्य कोई अच्छा और महंगा उपहार होगा ...वह जान गई कि उस गुदगुदे पुलिंदे में क्या होगा। दस-दस पाउंड वाले वही कंबल, जिनसे ईलिंग रॉड भरा पड़ा था।'[41]

इस पार्टी में आए मेहमानों की बातचीत के माध्यम से विदेशों में रहते प्रवासियों के समाज के खोखलेपन और बनावटीपन को उकेरा गया है। इस पार्टी में आए लोगों के भी अपने-अपने उद्देश्य हैं। हसन सायरा से शादी करना चाहता है और इस पार्टी में अपने लिए नौकरी पक्की की जुगत में है। यह पार्टी खास मेहमानों के लिए है, वे खास मेहमान हैं भारतीय उच्चायोग के तीन अधिकारी। इस पार्टी में लोग दहेज प्रथा, ब्रिटिश सरकार की दोहरी चाल, सीरिया की समस्या, मलाला यूसुफ, हिंदी भाषा की उपेक्षा जैसे कई मुद्दों पर बात करते हैं। पर किसी भी समस्या का हल निकालने का प्रयास नहीं करते। इस उपन्यास की खास बात है इसकी भाषा हिंदी उर्दू, अंग्रेजी, अवधी, पंजाबी आदि का मिश्रण पात्रों को प्रामाणिकता प्रदान करती है।

सुधा ओम ढींगरा का उपन्यास *नक्काशीदार कैबिनेट* अमेरिका में रह रहे

पति-पत्नी डॉ. संपदा और सार्थक की कहानी है। अमेरिका में आए हरिकेन और टारनोडो तूफान से उपजी त्रासदी और अमेरिका पुलिस की तत्परता को दिखाते हुए डायरी शैली में उपन्यास के पृष्ठ खुलते जाते हैं। *नक्काशीदार कैबिनेट* में रखी डायरी और उसमें लिखी पंजाब की सोनल की कथा। सोनल की शादी बलदेव से जबरदस्ती करवा दी जाती है क्योंकि वह अमेरिका में रहता है। बलदेव सोनल से देह व्यापार के साथ-साथ ड्रग्स का धंधा भी करवाना चाहता है परंतु अपने जीवन-संघर्ष दोस्त सुक्खी डॉ. साहिबा की मदद से सोनल इन सब चीजों से छुटकारा पा लेती है। यह उपन्यास पंजाब के गांव, वहां के परिवेश, धार्मिक कट्टरता, औरतों की जिंदगी, गंदी राजनीति का चित्र प्रस्तुत कर अमेरिकी व भारतीय जीवन की झांकियां दिखाकर उनकी तुलना भी करता है। वस्तुतः यह उपन्यास विदेशों को स्वर्ग मानने की मानसिकता पर पुनर्विचार की जरूरत पैदा करता हुआ दो संस्कृतियों को प्रस्तुत करता है।

प्रवासियों के कथा-साहित्य में नएपन का बोध है क्योंकि प्रवासी कथाओं मे अन्य देशों के परिवेश, संस्कृति, संघर्ष तथा विशेषताओं का अंकन देखने को मिलता है। इन कथाकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से एक भिन्न समाज से परिचय करवाया है। अपने देश को छोड़कर अन्य देश में बस जाना, अन्य संस्कृति में खुद को रचा-बसा देना आसान नहीं है। वे कई प्रकार के व्यक्तिगत, सामाजिक द्वंद्व तथा दबावों में रहते हैं। यह सांस्कृतिक दबाव उनकी कथाओं में दिखते हैं। सुषम बेदी मानती हैं कि 'प्रवासी बेशक विदेश में रहे पर उसके भीतर उसका घर हमेशा रहता है और साहित्य उस घर का पुनर्निर्माण ही है। घर माने उसके मूल्य संस्कार, परंपरा, विश्वास, परिवेश आदि।'[42] यह भी सत्य है कि इन प्रवासी कहानीकारों की रचनाओं में विश्व के विभिन्न देशों की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थितियां उनकी सृजनशीलता का हिस्सा बनकर उभरती हैं। यह सब हिंदी पाठक तक पहुंचना महत्वपूर्ण है। कई प्रकार के 'कल्चरल शॉक' सहते हुए यह प्रवासी साहित्यकार अपने देश से, अपनी जड़ों से जुड़े रहते हैं। इनकी कहानियों में सहज ही नई संवेदना, नई चेतना देखी जा सकती है। तेजेंद्र शर्मा मानते हैं कि प्रवासी साहित्यकार 'वैश्विक व्यक्ति की बात करता है केवल भारतीय की नहीं। प्रवासियों का साहित्य विचारधारा से बंधा साहित्य नहीं है। वह सीमित विषयों पर नहीं विस्तृत विषयों पर लिखता है।'[43] यह सत्य है कि प्रवासी साहित्यकारों के कथा-साहित्य से वैचारिक स्तर पर एक वैश्विक चेतना का प्रादुर्भाव हो रहा है।

संदर्भ

1. ओम प्रकाश तिवारी, *दैनिक जागरण* (पत्र), मुख्य पृष्ठ, 10.1.2017
2. वही
3. आशीष कंधवे, अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, 'वैश्विक पटल पर प्रवासी हिंदी साहित्य', हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, 20.1.2017
4. तेजेंद्र शर्मा, वही
5. सत्यकेतु सांकृत, वही
6. डॉ. कृष्ण कुमार, *वर्तमान साहित्य* (प्रवासी महाविशेषांक-1) जनवरी-फरवरी 2006, पृ. 68, रामघाट, अलीगढ़।
7. तेजेंद्र शर्मा, अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 'प्रवासी साहित्य : भाव और विचार', जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, 23.1.2017
8. तेजेंद्र शर्मा, अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 'कथा-साहित्य : वैश्विक परिदृश्य', मोतीलाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, 21.1.2017
9. कमलेश्वर, *वर्तमान साहित्य* (प्रवासी महाविशेषांक-2) मई -2006, पृ. 18 संपादक, नमिता सिंह, कुवंरपाल सिंह, रामघाट, अलीगढ़।
10. हिमांशु जोशी, वही, पृ. 25
11. डॉ. रामदरश मिश्र, अक्षरम संगोष्ठी, अप्रैल-जून 2006, पृ. 67
12. डॉ. कमल किशोर गोयनका, 'भूमिका', *शब्द योग*, अप्रैल 2008, पृ. 6
13. मीता सिंह, *वर्तमान साहित्य* (प्रवासी महाविशेषांक-2) पृ. 5, रामघाट, अलीगढ़।
14. सत्यकेतु सांकृत—*हिंदी कथा-साहित्य : एक दृष्टि*, पृ. 153, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
15. डॉ. अमरनाथ, *हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*, संस्करण 2012, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
16. तेजेंद्र शर्मा, 'पासपोर्ट का रंग' (कहानी) www.abhivyakti.hindi.org>passport
17. वही
18. वही
19. वही
20. तेजेंद्र शर्मा, 'कब्र का मुनाफा' (कहानी) www.hindi samay.com
21. वही
22. वही
23. वही
24. वही
25. तेजेंद्र शर्मा, *देह की कीमत*, कहानी-संग्रह, द्वितीय संस्करण 2007, पृ. 11, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

26. वही, पृ. 13
27. वही, पृ. 15
28. वही, पृ. 19
29. वही, पृ. 20
30. तेजेंद्र शर्मा, 'इंतजाम' (कहानी) sarokarnama.blogspot.in
31. तेजेंद्र शर्मा, 'रेत का घरौंदा' (कहानी), *देह की कीमत*, कहानी-संग्रह, पृ. 54
32. वही, पृ. 51
33. वही, पृ. 57
34. सुषम बेदी, *हवन*, (उपन्यास), पृ. 27, पराग प्रकाशन, दिल्ली
35. वही, पृ. 44
36. वही, पृ. 46
37. उषा प्रियंवदा, *अंतर्वंशी*, पृ. 203, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
38. वही, पृ. 103
39. दिव्या माथुर, *शाम भर बातें*, (उपन्यास), पृ. 11, संस्करण 2015, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
40. वही, पृ. 16
41. वही, पृ. 23
42. सुषम बेदी, अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 'कथा-साहित्य : वैश्विक परिदृश्य', मोतीलाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, 21.01.2017
43. तेजेंद्र शर्मा, अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 'वैश्विक पटल पर प्रवासी हिंदी साहित्य', हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, 20.01.2017